Anusandhanvallari
Vol 2026, No.1
April 2026
ISSN 2229-3388

नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक साहित्य का अध्ययन

प्रहलाद सिंह (शोध छात्र), डा0 धनेश कुमार मीना (शोध निर्देशक)

विशय हिन्दी कला विभाग, फैकल्टी ऑफ मानविकी मंगलायतन विश्वविद्यालय, बेसवां, अलीगढ़

सारांश: नागार्जुन के रचनाकार को मुख्यतः दो सृजनात्मक लाभ उपलब्ध हुए। एक तो 'गोदान' की परम्परा मिली, जो प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि आदि से होती हुयी गोदान तक पहुँची थी, और दूसरे स्वाधीनता संग्राम की लहर जब नगरों को अतिक्रमण करते हुए अंचलों तक पहुँची, गाँवों तक पहुँची तो वहाँ भी एक नयी चेतना का अभ्युदय हुआ। ग्राम्य चरित्रों में भी अपर संभावनाएँ उजागर हुयीं। नागार्जुन तथा नागार्जुन जैसे अन्य सजग रचनाकारों ने अनुभव किया कि कृषिप्रधान भारत में अगर कभी जनवादी समाज व्यवस्था बनी, राजव्यवस्था बनी, तो उसका प्रमुख क्षेत्र ग्राम्य जीवन ही होना चाहिए। दूसरी ओर गाँधीवादी चिन्तन भी लगभग ऐसा ही संकेत दे रहा था। गांधी जी भी नीचे से परिवर्तन लाना चाहते थे, साथ ही गाँधी के प्रिय समाजवादी युवक नेता भी ग्राम्य या कृषक आंदोलनों के द्वारा ही जनवादी समाज की स्थापना के लिए उधत थे। इसी के समानान्तर 1925–26 में जब कानपुर में कम्यूनिष्ट पार्टी ने अपना राजनीतिक आधार पाया तो जहाँ एक ओर ट्रेड यूनियन के द्वारा मजदूरों की सहायता से जनवादी समाज की ओर बढ़ने के लिए राजनीतिक उद्यम की शुरूआत हुयी वहीं दूसरी ओर किसान आंदोलनों के द्वारा भी राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। कांग्रेस को भी अंततः किसान आंदोलन को वरीयता देनी ही पड़ी। स्वयं नेहरू और पटेल भी इस दिशा में सक्रिय हुए। निष्कर्ष यह कि पूरी राजव्यवसाी और समाज व्यवस्था दोनों के केन्द्र में क्रमशः कृशक जीवन, ग्राम्य जीवन प्रधान होने लगा। इसीलिए एक नये यथार्थ का अभ्युदय हुआ जिसका केन्द्र बना भारत का गाँव और वहाँ का कृषक जीवन। नागार्जुन ने इसी भावभूमि को अपनी रचनाओं का आधार बनाया।

मुख्य शब्द, शोषणमुक्त, गाँधीवादी चिन्तन, जनवादी समाज, सामंती शोधक आदि।

प्रस्तावना, स्वाधीनता आंदोलन के दौर में स्वाधीनता सेनानियों में एक नये समाज का सपना देखा था, नये चरित्रों की आकांक्षा संजोयी थी। न्याय, समानता पर आधारित एक राजव्यवसाी चाही थी और शोषणमुक्त, रूढ़ियों से दूर, अन्धविश्वासों को मिटाने वाला एक प्रगतिशील जनवादी समाज चाहा था। इस महान सपने को पूरा न होने देने के लिए जिस देसी शक्ति ने प्रबल प्रतिरोध का माहौल बनाया उसमें जमींदार, ताल्लुकेदार जैसे सामंती शोधक तो थे ही, सरकारी मशीनरी ने भी इस प्रतिरोध को बहुत अधिक बढ़ावा दिया। गाँव–गाँव में, कस्बों–कस्बों में जहाँ–जहाँ नये–नये युवकों ने नये–नये सोचों से जब कुछ नया काम शुरू किया तो इस प्रतिरोधी शक्ति ने उन्हें जी भर कुचला। कहीं–कहीं ये टूटे भी, मिटे भी, तो कहीं कहीं सफल भी हुए। नयी चेतना को विकसित करने में वे कामयाब भी हुए। नागार्जुन के उपन्यास इस दृष्टि से चरित्र सृजन में बेजोड़ हैं। आम उपन्यासों की तरह नागार्जुन के उपन्यासों में चरित्र–सृष्टि को आंकना एक सुनियोजित बेईमानी है क्योंकि नागार्जुन उस नयी चेतना के बाहक रचनाकार है जिसमें ऐसे तमाम युवक–युवतियों की परिकल्पनायें हैं जो उठें लड़ें और अपने समाज को बदलने का निरन्तर उद्यम करें। यह ठीक है कि जहाँ–तहाँ रचनाकार ने ऐसे पात्रों के सुजन में अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप विचारों का आरोपण भी किया है लेकिन 'संघर्ष युग' के रचनाकार में चरित्र सृजन के जो आयाम होते हैं वे आयाम 'विकासयुग' के रचनाकारों में नही होते। इसीलिए कदाचित 'टाइप' दिखते हुए भी नागार्जुन के पात्र जो उनकी धारणाओं के संवाहक हैं उन्हें वस्तुतः संघर्षयुग के चरित्रों में ही गिना जाए, हमारी अनुशंसा है।

नागार्जुन एक यथार्थवादी जनवादी उपन्यासकार है। अपने युग के यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में वर्गीय चरित्र की सृष्टि की हैं। इसमें प्रतिनिधि (टाइप) चरित्र हैं, तो गतिशील चरित्र (विकासशील) भी। डॉ. तेज सिंह के अनुसार ''नागार्जुन के उपन्यासों में प्रतिनिधि (टाइप) और गतिशील दोनों ही तरह के चरित्र मिलेंगे।''प्रतिनिधि चरित्र वे होते हैं जिनमें वैयक्तिक भावनायें तथा आकांक्षायें तो मिलती ही है, साथ ही ये सामान्य चरित्र होते हुए भी अपनी वर्गीय विशेषताओं से युक्त होते हैं। नागार्जुन के उपन्यासों में प्रतिनिधि चरित्र हैं – बलपनमा (बलपनाम), दिगम्बर (नयी पौध), जीवनाथ, जेकिसुन (बाबा बटेसरनाथ), मोहन मांझी (बरूण के बेटे), दुखमोचन (दुखमोचन) गरीबदास। इसी तरह गतिशील (विकसनशील) चरित्र वे हैं जिनका उत्तरदोत्तर चारित्रिक विकास होता है। वे स्थिर पात्र नहीं, अपितु उनके वैयक्तिक चरित्र में निरन्तर विकास होता रहता है। इस दृष्टि से नागार्जुन के उपन्यासों में प्रमुख गतिशील चरित्र हैं– गौरी (रतिनाथ की चाची),

फूलबाबू, राधाबाबू (बलपनमा), टुनाई पाठक (नई पौध), दयानाथ (बाबा बटेसरनाथ), भोला, खुरखुन, मधुरी (वरूण के बेटे), वेणीमाधव, कपिल, माया (दुखमोचन), चम्पा, निर्मला (कुंभीपाक), मंजुमुखी देवी, माधवी, नगेन्द्र (अभिनन्दन), भभीखनसिंह, कामेश्वर (उग्रतारा), इमरतिया, मस्तराम (इमरतिया), पार्वती, बिरजु (पारो)। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में जनवादी मूल्यों के लिए संघर्ष किया हैं इस संघर्ष में सक्रिय भूमिका उनके पात्रों (चरित्रों) की हैं ये चरित्र नागार्जुन की जनवादी चेतना के वाहक हैं। उनके किसी किसी उपन्यास में अकेले एक पात्र ही रवीन्द्रनाथ के 'एकला चलो' गान के तर्ज में कदम मिलाकर आगे बढ़ता दिखायी देता है, ते किसी उपन्यास में विविध पात्रों का सामुहिक प्रयास लक्ष्य तक पहुँचने में सहायक होता है। नागार्जुन के विविध उपन्यासों में लिंग, जाति, धर्म, वय, वर्ग आदि की दृष्टि से पात्रों की संख्या करीब एक सौ साठ के आस–पास है। चरित्र सृष्टि की दृष्टि से ये पात्र प्रमुख तथा गौज दो रूपों में देखे जा सकते हैं, जिनकी जनवादी मूल्यों की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका है। सवाल यह है कि क्या चरित्र–सृष्टि पर विश्लेषण विवेचन करते समय सभी पात्रों की पड़ताल आवश्यक है अथवा उपन्यास के केन्द्रीय (प्रमुख) पात्र का विश्लेषण ही अहम हैं नागार्जुन के पात्र चाहे प्रतिनिधि चरित्र हों या विकसनशील, प्रमुख चरित्र हो या गौण, उनकी केन्द्रीय भूमिका का विश्लेषण ही यथार्थवादी जनवादी दृष्टि के अनुकूल होना। रामदरश मिश्र के शब्दों में कहें तो ''नागार्जुन के उपन्यासों में मिथिला तो है। एक प्रसंग के रूप में लेकिन उनकी संरचना यथार्थवादी उपन्यासों की परम्परा की है। प्रेमचन्द की परम्परा की मान लीजिए। क्योंकि उसमें एक पात्र केन्द्र में होता है। चाहे बलपनमा हो, चाहे दुःखमोचन हो और चाहे उनके और उपन्यास हों। तो एक पात्र की कथा मुख्य होती।' इस प्रकार हमने सभी चरित्रों की पड़ताल न करके जनवादी दृष्टि से प्रमुख चरित्र को ही अपने विश्लेषण–विवेचन का आधार बनाया हैं किसी किसी उपन्रास में ऐसा भी हुआ है कि कथा के केन्द्र में कोई दूसरा पात्र है (नयी पौध), परन्तु नागार्जुन उस उपन्यास में जिस नये समाज की परिकल्पना करना चाहते हैं, जिस जनवादी दृश्टि की स्थापना करना चाहते हैं, उसमें संघर्ष की भूमिका किसी अन्य पात्र की होती है। (नयी पौध में संघर्ष की मुख्य भूमिका दिगम्बर की है।)। जनवादी दृष्टि से इन उपन्यासों में नयी समाज व्यवस्था की स्थापना में जिन चरित्रों की प्रमुख भूमिका रही है उन्हीं का विश्लेषण–विवेचन हमारे इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य है। रतिनाथ की चाची उपन्यास में प्रमुख चरित्र है 'गौरी'। अन्य गौण चरित्र हैं– जयनाथ, रतिनाथ, उमानाथ, जयकिशोर तथा उसकी माँ। उपन्यास में 'गौरी' का चरित्र केन्द्रीय चरित्र हैं। यह एक गतिशील चरित्र हैं चरित्र सृष्टि की दृष्टि से नागार्जुन ने भले ही अपने उपन्यासों में प्रतिनिधि (टाइप) चरित्रों को महत्व दिया है और यों कहें कि ''प्रतिनिधि चरित्रों की सृष्टि नागार्जुन के उपन्यासों की रीढ़ है।'' परन्तु एक विधवा के जिस अभिशाप जीवन की करूण प्रतिष्ठा नागार्जुन ने गौरी जैसे चरित्र में की है वह गतिशील होते हुए भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। इस उपन्यास में ''एक विधवा नारी जो समाज की समस्त अवहेलना, अपमान पीकर, आत्मपीड़ा से क्षणी होती जा रही है, उसका मानवीय चरित्र कितना महान है, उसका चरित्र–चित्रण ही लेखक का मुख्य ध्येय है।'

सम्बन्धित साहित्य का अवलोकन

सिंह, अयोध्या (1937) 'भारत का मुक्ति समाज' तुलसीदास जिन्हें लोकाचरण का कवि कहा जाता है, का समूचा साहित्य सामाजिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक परिस्थितियों का जीता जागता सबूत है। एक ओर तुलसी साहित्य में सामन्ती विचारधारा का विरोध है तो दूसरी ओर जनका की गरीबी, भुखमरी तथा महामारी का चित्रण। जैसा कि अंग्रेजी लेखक सौण्डर्स ने अपनी पुस्तक 'पैमेन्ट ऑफ इंडिया' में लिखा है कि जो शासक अकबर से पहले आये थे उनके उत्तराधिकारियों के बारे मे 'हम एक प्राचीन चीनी देशभक्त के शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं, जिसने अपने समय के शासकों के लिए कहा था'

नागार्जुन बाबा बटेसरनाथ (1935) कलाकार या साहित्यकार का, युग–धर्म से गहरा सम्बन्ध होता हैं वह उससे प्रभावित भी होता है क्योंकि, प्रत्येक समाज व्यवस्था अपने आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों के अनुरूप विचारों, भावनाओं और अनूभूतियों को एक विशेष दिशा में मोड़ती है एक विशेष ढाँचे में ढालती है। देश और काल के इस प्रभाव से बचना संभव नहीं है। फलतः साहित्यकार अपने युग–धर्म का गहराई से अनुभव करता है और अपने समय को बदलकर उससे बेहतर बनाने की कोशिश करता है।

शर्मा, डा0 रामविलास (1932) 'भारत में अंग्रेजी राज्य और मार्क्सवाद' तात्पर्य यह है कि जनवाद की एक लम्बी परम्परा हमारे साहित्य में रही है जिसे सिर्फ भारतेन्दु के समय से ही स्वकीार करना बहुत ठीक नहीं लगता, हाँ भारतेन्दु के समय से उसकी प्रगतिशीलता के स्वर में तेजी आयी, इसे जरूर स्वीकार किया जा सकता है।

शोध के उद्देश्य, इस शोध पत्र को पूरा करने के लिये मेरे द्वारा निम्न शोध उद्देश्य तैयार किये गयें है।

1. नागार्जुन के काव्य से हिन्दी साहित्य की जनवादी परमपरा को ज्ञात किया गया है।

2. नागार्जुन के काव्य की उत्कर्श कालीन दौर को ज्ञात किया गया है।

3. नागार्जुन के काव्य में ि ाल्पविधि को ज्ञात किया गया है।

शोध प्रश्न,इस शोध पत्र को पूरा करने के लिये मेरे द्वारा निम्नलिखित शोध प्रश्न का सहारा लिया गया है।

1 नागार्जुन के काव्य में जनवादी पीढ़ियों का अध्ययन किया गया है।

2 नागार्जुन के काव्य में जनवादी विकासकालीन दौर की रचनाओं का अध्ययन किया गया है।

3 नागार्जुन के काव्य में जनवादी सामाजिक सरोकारो का अध्ययन किया गया है।

शोध विधि, अधिकतर साहित्यकारों के आधार पर हिन्दी साहित्य में आंकड़े उलझे ही होते हैं जैसे हिन्दी कथा जनवादी परम्परा में नागार्जुन के उपन्यासों का एक साहित्यक अध्ययन के समकालीन समय को शोधार्थी ने देखा तो नहीं है इसीलिये वह पूरी तरह से उसी साहित्य और कविताओं पर निर्भर है जो नागार्जुन के उपन्यासों समकालीन समय में साहित्यकारों ने लिखा है। इस साहित्य में नागार्जुन के उपन्यासों की सच्चाई भी हो सकती जो ऐसे कई हिन्दी साहित्य पुरातात्विक और अब तक अज्ञात अनेक कवियों की कविताऐं भी मिल सकती हैं जिनके गहन अध्ययन और विचार विमर्श के बाद जो सत्यता प्रकट होगी उसी को मैं इस शोध पत्र में यथास्थान वर्णित किया गया है। इसीलिए इस शोध पत्र मे शोधार्थी द्वारा वर्णनात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

विशय का महत्व, नागार्जुन ने गौरी की विवशता उसकी मजबूरी का स्पष्ट संकेत देते हुए लिखा है कि यद्यपि ''चाची जिस काम के लिए अपनी माक्र के यहाँ जा रही थी, उसमें सराहना, खुशी और स्वागत की कल्पना ही नहीं की जा सकती। उसके मुँह पर तो कालिख पूती हुई थी।'' परन्तु गौरी को अपनी माँ की सरल, शीतल तथा दयालु स्वभाव पर पूरा भरोसा था और इसी के सहारे ''उसने तक किया कि आज तो नहीं, कल रातों रात वह तरकूलवा चली जायेगी। वहाँ गाँव में ही, कई चमाइनें हैं। डॉट, फटकार, गंजन–फजीहत के बावजूद भी माँ आखिर माँ ही होगी। लड़की का कवच बनकर तमाम मुसीबतों को वह अपने ऊपर ले लेगी, इसमें भी क्या कुछ शक है,'' इस प्रकार अपने जीवन में हुई एक भूल के चलते अपमान तथा सामाजिक तिरस्कारपूर्ण जीवन बिताने वाली गौरी का चरित्र एक स्वाभिमानी नारी के चरित्र रूप में भी देख गया है। अपने पति की मृत्यु के पश्चात भाई जया किशेर के लाख चाहने पर भी गौरी तरकुलवा में रहना नहीं चाहती। वह दूसरी बात थी कि आम वह मुसीबत के विचित्र थपेड़े सह रही थी, मगर यों गौरी की प्रकृति में स्वाभिमान की मात्रा कूट–कूटकर भरी हुई है। इसी कारण पितृगृह की अपेक्षा पतिग

हमें रहना उसने पसंद किया। एक बार आग्रह करने पर अपनी माँ से गौरी ने कहा था– ''बाबू (पिता) ने कुश–तिल–जल लेकर मुझे दान कर दिया, फिर मेरा इस घर में रहना अनुचित नहीं होगा, माँ? विवाहिता के लिए पितृकूल का अमृत भी पतिकूल के माड़ या पीने के साधारण जल की तुलना में तुच्छ है।'' नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में जिन चरित्रों की सृष्टि की है वे लेखक के जनवादी यथार्थवादी दृष्टिकोण के परिचायक है। 'रतिनाथा की चाची' उपन्यास की गौरी का चरित्र भी क्रमशः प्रगतिशील होता गया है। उपन्यास के आरम्भ में जिस गौरी के भीतर अपमान, घृणा तथा करूणा की झलक थी, गर्भपात कराने के बाद उसी गौरी का जीवन एकदम बदल जाता है। वह कर्म और विचार, दोनों में प्रगतिशील होती जाती है। यह चर्खा चलाती है। व्रत, उपवास, भजन, अतिथि–सेवा, धार्मिक कार्यों में सहयोग करना उसके यथार्थवादी जनवादी चरित्र के प्रमुख अंग बन जाते हैं। वह ुभंकरपुर के जमींदारों के खिलाफ संगठित हो रहे किसान संगठन को अपना पूरा समर्थन देती है। 'किसान–कुटी' के लिए उसने अपना दो साल का पुराना कम्बल दे दिया। रतिनाथ ने मना किया तो बोली – ''यह दस का काम है। देश का काम है। गरीबों का यज्ञ है। मेरे पास और है ही क्या, जो दूंगी।'' जिस जयनाथ ने उसे अपमान तथा लांक्षनपूर्ण जीवन के सिवा कुछ नहीं दिया, उसी जयनाथ के प्रति गौरी का यह दृष्टिकोण उसके प्रगतिशील जनवादी चरित्र का ही परिचायक हैं वह रतिनाथ से स्पष्ट कहती है ''मुझे क्या, अकेली भी रह लूंगी। परन्तु मेरे भैया के साथ रहकर तुम अपने बाप को न भूल जाना, समझती हूँ, पिता के प्रति तुम्हारे हृदय में माया–ममता बहुत ही कम है। परन्तु सद्गति तो उनकी तुम्हारे ही तर्पण से होगी। संसार उन्हें खिला सकता है, पिला सकता है, जिला सकता है, पर मरने के बाद वह उन्हें प्रेत होने से नहीं बचा सकता। यह तुम्हीं कर सकते हो।''गौरी अखिल भारतीय सूत–प्रतियोगिता में सर्वप्रथम पदक प्राप्त करती है। गौरी जयनाथ से घुण नहीं करती अपितु वह जयनाथ को जीवनपथ पर चलते हुए बार–बार सचेत करती हैं एक विधवा तेलिन के साथ

जयनाथ के बढ़ते सम्पर्क को देख गौरी जयनाथ को आग्रह करती हुई कहती है, ''शादी कर लो बाबू भले आदमी की जिन्दगी बिताओ। सेंध लगाने की फिराक में भीतों की ओर घूरते रहनेवाला चोर क्या खाक चैन से हरेगा।

निश्कर्श, रूढ़िवादी समाज की नारी होने पर भी सामाजिक विचारों में प्रगतिशील है तथा राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित।'' मैथिल की कुलीन, सामन्तवादी तथा रूढ़िवादी समाज की उपज, निठल्ला, कर्तव्यहीन, ब्राहमणवृत्ति पर जीविकोपार्जन करने वाला देवर जयनाथ 400 रूपये के लोभ में धुल रसिनाथ की शादी किशोरावस्था में ही कर देना चाहता है, तो चाची उसे रोकती है। यह जयनाथ को फटकारती हुई बोली – ''तुम भी धन्य हो। महाजन बनने की धुन में यही सब सोचा करते हो? इस तरह में तुम्हें रत्ती का गला नहीं काटने दूंगी। तुम्हारा वह खिलौना मात्र है, परन्तु मेरा? मेरा वह कलेजा है। उसके साथ खिलवाड़ मत करो।'' इस प्रकार वैवाहिक रूढ़ियों का शिकार से रतिनाथ को बचाते हुए गौरी जयनाथ को फटकारती है, तो अपने शत्रुओं के प्रति भी उसका मानवतावादी प्रगतिशील जनवादी रूप उभरकर सामने आता है। गौर के गर्म रह जाने पर, जिस दमयन्ती ने उसकी खिल्ली उड़ाई थी, अपमानित किया था तथा सामाजिक बहिष्कार जैसा कठोर दण्ड दिया था, वही दमयन्ती जब शुभंकरपुर में फैले मलेरिया का शिकार होती है तो ''डाक्टर–वैध कोई काम न आया। काम आई उमानाथ की माँ। बेचारी ने जी–जान से सेवा की, फिर भी दमयन्ती न बधी तो इसमें किसका दोष''? गौरी को अपने पारिवारिक जीवन में भी धुआ तथा तिरस्कार ही मिलता है। वह अपने पुत्र उमानाथ के व्यवहार से क्षुब्ध है। बेटे के अपमान से पीड़ित गौरी इस बात से चिन्तित है कि ''जीवन की एकमात्र आशा–पुत्र जब इस प्रकार विमुख हो रहा है तब किसके बूते वह अपने दिन कोटेगी?'' मौरी के मान में आत्महत्या का विचार आता है परन्तु पुत्र उमानाथ का अपयश उसे तहय नहीं और वह सोचती है कि ''अब, गले में फंदा डाकल मरूँगी तो बेचारा (उमानाथ) सुयश का ऐसा भारी पहाड़ कैसे संभाल सकेगा? माँ को लेकर जितना यश उसे अब तक मिला है वही पर्याप्त है। फांसी लगाकर, गौरी, स्वयं तो तू भवबन्धन से छुटकारा पा लेगी लेकिन उस अभागे का क्या होगा?'' गौरी आत्महत्या का विचार त्याग देती हैं उमानाथ के मना करने पर भी गौरी चर्खा नहीं छोड़ती। अपनी बहु कमलमुखी के व्यवहार से गौरी की स्वतंत्रता जरूर बांधित होती है फिर भी गौरी ने ''सिर झूकाकर परिवार की इस नई व्यवसीा को कबूल कर लिया।'' उसने तमाइशीनों की यह मनोकमना, कि ''उमानाथ की माँ अपनी पतोहू को खुलकर गालियाँ दे, झोंटा पकड़कर घसीटे। झाडु–मुस्सर से मोरे। बदले में पतोहु, भी उसको एक का दस सुनाये, झोंटा पकड़े फिर बाकी ओर सें पंच बनकर फैसला करें'', को गौरी ने पूरा नहीं होने दिया। ''चाची ने यह सब होने का अवसर आने ही नहीं दिया। वह सारा विष स्वयं ही पीती गयी।'' यहाँ गौरी द्वारा नयी व्यवस्था को स्वीकार करना तथा उस विष को स्वयं पीना, उसके चरित्र की दुर्बलता नहीं, अपितु सफलता है। यहाँ नागार्जुन ने स्पष्ट किया है कि इस नयी व्यवस्था की स्वीकृति के पीछे गौरी का प्रगतिशील लक्ष्य ही था, जो किसी भी कीमत पर पारिवारिक एकता को बनाये रखना चाहती है। इसके लिए उसे चाहे जो भी त्याग करना पड़ा। यह नागार्जुन के चरित्रों का जनवादी रूप है जो पारिवारिक एकता, सामाजिक एकता के साथ ही राष्ट्रीय एकता को किसी भी हाल में बनाये रखना चाहते है। गौरी एक ऐसी ही नारी है जो अपने अंतिम क्षणों में भी राष्ट्रीय घटनाचक्रों पर विचार करती हुयी अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परियय देती हैं उसे संग्रहणी हो जाती है, वह बीमार पड़ जाती है, परन्तु इस हालक में भी ताराचरण ये यह सुनकर कि हिटलर ने रूस पर हमला कर दिया है, गौरी कहती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची,

[1] डॉ. सत्यपाल बुध,प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि, पृ. 571–572

[2] इन्द्रनाथ मदान,आज का हिन्दी उपन्यास, पृ. 45–46

[3] डॉ. चण्डीप्रसाद जोशी, हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन, पृ. 366

[4] डॉ. नगीना जैन, आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, पृ. 151

[5] डॉ. जय नारायण (सम्पादक) कल के लिए (नागार्जुन अंक–1), पृ. 28–29

[6] डॉ. तेज सिंह, नागार्जुन का कथा–साहित्य, पृ. 147